अध्याय – 5

स्तरिकी
(Stratigraphy)

संस्तर एवं स्तरिकी की परिभाषा

पृथ्वी ठोस रूप में बनी एवं उसके चारों ओर वायुमण्डल का विकास हुआ। इसके पश्चात् वायुमण्डल के विभिन्न घटकों का उस पर प्रभाव पडा। इस प्रकार पुराने ठोस शैलों का अपरदन प्रारम्भ हुआ। अपरदित पदार्थ का समुचित क्षेत्र में संचय हुआ। नये प्रकार के शैलों का विकास हुआ। जीवों की उत्पत्ति हुई और वे मृत अवस्था में शैलों के साथ संचयित होने लगे। अनेक हलचल हुए। जलवायु, जल एवं स्थल की स्थितियाँ बदलती रहीं। पूर्व–निर्मित शैलों पर दबाव एवं तापक्रम का प्रभाव पड़ने पर नये प्रकार की शैलों का निर्माण हुआ। इस प्रकार सतत् या असतत् रूप से शैलों का निक्षेपण और निर्माण चलता रहा है। भू–पृष्ठ के समस्त अनावृत और आवृत शैल, उनकी स्थिति एवं उनकी संरचना भू–वैज्ञानिक अतीत में होने वाली घटनाओं का परिणाम है। अतीत की घटनाओं के ज्ञान के लिए इन शैलों का अध्ययन आवश्यक है। भू–वैज्ञानिक अतीत में निर्मित शैलों के क्रमबद्ध अध्ययन को स्तरिकी कहते हैं। दूसरे शब्दों में पृथ्वी का वैज्ञानिक इतिहास है।

स्तरिकी का प्रमुख उद्देश्य किसी स्थान विशेष के शैलों का अध्ययन कर वहाँ शैल–अनुक्रम निर्धारित करना और उसकी कालगत व्याख्या करना है।

स्तरिकी के सिद्धान्त

किसी क्षेत्र का स्तर–वैज्ञानिक अध्ययन एक निश्चित क्रम में किया जाता है। सर्वप्रथम उस क्षेत्र विशेष के शैल एकक (Rock Unit) या अश्म एककों (Litho Units) का मानचित्रण और उनका क्रम निर्धारण किया जाता है। दूसरा कार्य स्थापित शैल–अनुक्रम या अन्य क्षेत्रों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा स्वीकृत सारणी के विभिन्न एककों (मुख्यतया कालानुक्रम) से सह–सम्बन्धन या समक्रम (Homotaxis) निर्धारित किया जाता। इसके पश्चात् स्थापित मान्यताओं के आधार पर प्राप्त क्रम का निक्षेपण (Deposition), तत्कालीन जलवायु (Climate) या परिस्थितियाँ (Environment) परिभाषित की जाती है। अन्ततः विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर क्षेत्र विशेष और समूचे विश्व का पुराभूगोल (Palaeogeography) निश्चित किया जाता है।

उक्त अध्ययन कुछ विशेष सिद्धान्तों पर आधारित है। इन सिद्धान्तों को स्तर–वैन्यासिक सिद्धान्त (Stratigraphic Principles) कहा जाता है। स्तरित शैल–विज्ञान के विवेचन के पहले इन सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।

स्थानीय अनुक्रम एवं अध्यारोपण

स्थानीय अनुक्रम–निर्धारण के लिए अध्यारोपण के सिद्धान्त (Law of Superposition) का अनुसरण किया जाता है। यह नियम सर्वप्रथम सैद्धान्तिक रूप से जेम्स हटन (1726–1797) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसके अनुसार एक अविक्षुब्ध (Undisturbed) क्षेत्र में, चूंकि अवसादी शैल (जो कि अधिकांश पाये जाते हैं) परत दर परत विक्षेपित होते हैं, ऊपर मिलने वाली शिलाएँ नई और क्रम में नीचे अवस्थित शिलाएँ अपेक्षतया पुरानी होंगी। लेकिन विवर्तनिक रूप से विक्षुब्ध क्षेत्रों में शैलों का क्रम व्युत्क्रमित हो सकता है। उदाहरणार्थ हिमालय में व्युत्क्रमित अनुक्रम है। ऐसी स्थिति में तल और शीर्ष (Bottom and Top) सम्बन्धी कसौटियों का सहारा लेना पडता है। इन कसौटियों में तिर्यक् संस्तर, तरंग चिह्न, कर्षज वलन, जीवाश्मों के कवच इत्यादि हैं। इस प्रकार सही क्रम निर्धारित कर लेने पर निचले क्रम के शैल पुराने और उपरिक्रम के शैल नये होंगे। इस सिद्धान्त के विकास में हटन, लेहमन, जान स्टैशे, विलियम स्मिथ इत्यादि का विशेष योगदान है। क्रम–निर्धारण के लिए 'अन्तर्हित खण्डों' या समाविष्ट खण्डों का अध्ययन भी उपयोगी है। इसके अनुसार किसी शैल में केवल पुराने शैल के खण्ड ही मिल सकते हैं। रेडियो एक्टिव विधियों से भी क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

वास्तविक समस्या स्थापित क्रम का वर्गीकरण है। किसी एक सेक्शन विशेष में क्रम निर्धारित कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। स्थापित क्रम के विभिन्न खण्डों (एककों) का विस्तार अथवा उनके एक क्षेत्र में वितरण का अध्ययन आवश्यक है। इस प्रकार के सबसे छोटे मानचित्रण योग्य एककों को संस्तर (Bed) कहा जाता है। कई संस्तरों को मिलाकर एक शैल समूह (Formation) होता है। इस प्रकार के विभाजन और एक क्षेत्र के मानचित्रण के लिए संरचना, जीवाश्म, अश्म–विज्ञान (Lithology) एवं विषम–विन्यास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इस पर भी अवसादों के संलक्षणी परिवर्तन पर समूचे क्षेत्र में वितरण निर्धारण करना एक समस्या है। संलक्षणी एवं उनके सिद्धान्त का विवेचन आगे किया गया है।

सह–सम्बन्ध, सक्रमक एवं प्रारूपिक सेक्शन

वैसे स्थानीय अनुक्रम तो स्तरिकी का आधार है लेकिन एक अपेक्षतया अधिक विस्तृत क्षेत्र में भौमिकीय अतीत की परिस्थितियों को आँकने के लिए विस्तृत क्षेत्र के कई स्थानीय सेक्शन का आपस में सम्बन्ध ज्ञात करना आवश्यक है। इस कार्य को सह–सम्बन्धन कहते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य एक निश्चित काल विशेष में विभिन्न स्थलों में हुए शैलों को एकत्रित करना है। इसके आधार पर भौमिकीय अतीत का कालानुक्रम और विभिन्न कालों में घटित परिवर्तनों एवं घटनाओं को सारणी में रखा जा सकता है।

इस प्रकार सह–सम्बन्ध के प्रमुख उपाय भौमिकीय अतीत में निर्मित शैलों का काल–निर्धारण और व्यतीत समय का मापन है। काल–मापन के दो उपाय हैं। एक तो एकदेशीय और अव्युत्क्रमणशील प्रविधियों की सहायता से और दूसरे पुनरावृत्त होने वाली घटनाओं की सहायता से। पहले प्रकार की प्रविधियाँ रेडियो एक्टिव विघटन और जीवों का विकास हैं। दूसरे प्रकार की प्रविधियाँ अवसादन चक्र (Sedimentary Cycle) एवं वार्व (Varve) हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रविधियाँ भी हैं। इस प्रकार सह–सम्बन्धन की कुल कसौटियाँ इस प्रकार हैं–

(1) जीवाश्म

(2) रेडियो एक्टिव प्रविधि

(3) अश्म–वैन्यासिक विशेषताएँ

(4) स्तर वैन्यासिक सातत्य

(5) विषम–विन्यास

(6) कायान्तरण कोटि

(7) विवर्तन एवं संरचनात्मक विक्षोभ

इस सन्दर्भ में दो प्रकार के शैलों में अन्तर करना आवश्यक है प्रथम कोटि के वे शैल हैं जिनमें जीवाश्म मिलते हैं। इनका सह–सम्बन्धन आसान है। दूसरी कोटि के वे शैल हैं जिनमें जीवाश्म नहीं मिलते हैं। पूर्व–कैम्ब्रियनकालीन शैल इसी प्रकार के हैं। इनका सह–सम्बन्धन कठिन है।

जैव स्तरिक इकाईयाँ

जीवाश्मयुक्त शैलों के सह–सम्बन्धन के लिए जीवाश्म सर्वाधिक परिशुद्ध आधार प्रस्तुत करते हैं। इस उपयोगिता का प्रमुख आधार यह मान्यता है कि एक निश्चित काल में विश्व के समस्त जीव अतीत और भविष्य के जीवों से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस प्रकार जीवाश्मों को एक क्रम में रखा जा सकता है। किसी स्थानीय सेक्शन से प्राप्त जीवाश्मों का क्रमबद्ध सारणी के जीवाश्मों से तुलना कर उनकी आयु ज्ञात की जा सकती है। इसी प्रकार दो क्षेत्रों में जीवाश्मों की तुलना कर उनको सह–सम्बन्धित किया जा सकता है। स्मिथ के अनुसार प्रत्येक शैल समूह के अपने विशिष्ट जीवाश्म होते हैं।

प्रारम्भ में यह माना जाता था कि समस्त जीव एक साथ उत्पन्न हुए और अन्त तक ज्यों के त्यों बने रहे। सन् 1812 में जार्ज कूवियर ने विभिन्न विवर्तनों की धारणा प्रस्तुत की। प्रत्येक हलचल के साथ प्रभावित क्षेत्र के जीव समाप्त हो गये और जीव उत्पन्न हुए। ल्येल (1812) तथा एच. टीला बेशे (1834) इस धारणा से असहमत थे। इनके अनुसार परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही नये जीव उत्पन्न हुए और इस प्रकार उत्तरोत्तर जीवों की वृद्धि होती रही। इसके पश्चात् डि. आर्बिनी (1807–1857) ने ज्ञात प्राणि–समूहों का क्रम निर्धारित किया। उनके अनुसार जीवाश्मों में कुल 27 क्रम थे तथा तदनुरूप अवसादों के भी कुल 27 क्रम हैं। इसके पहले ही ल्येल ने जीवाश्मों का उपयोग भू–वैज्ञानिक अतीत को वर्गीकृत करने में किया। सन् 1859 में चार्ल्स डार्विन की 'ओरिजिन ऑफ स्पिशीज' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने विख्यात विकासवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। तब से आज तक विकासवाद के सिद्धान्त में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। डि. आर्बिनी के अनुसार प्रत्येक प्राणि–समूह समूची पृथ्वी पर एक साथ उत्पन्न हुआ। जबकि डार्विन के अनुसार जीवों का उत्तरोत्तर विकास होकर वे आज की स्थिति में आये। इस प्रकार जीवाश्मीय विविधता का कारण कुछ जीवों के प्रजातियों का विकास और कुछ प्रजातियों का विलोपन है। कुछ प्रजातियों तो परिस्थितियों के परिवर्तन पर तीव्र गति से परिवर्तित हुए जबकि कुछ में स्थितियों के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरे प्रकार की प्रजातियों का उदाहरण नकुला एवं लिंगुला नामक स्पिशीज हैं। इसी बीच सन् 1862 में टी.एच. हक्सले (1825–1895) ने लन्दन की भौमिकीय समिति के समक्ष भौमिकीय समकालिकता (Geologic

Contemporanity) पर अपना प्रसिद्ध पत्र प्रस्तुत किया। हक्सले के अनुसार जीवाश्मों की सहायता से स्थापित सह–सम्बन्धन की परिशुद्धता सन्देहास्पद है। उदाहरणार्थ यदि यूरोप के कुछ शैलों में मासूपियल और ट्राइगोनिया जीवाश्म मिलते हैं तो वे शैल मध्यजीवी–कालीन होंगे। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया में इन्हीं जीवाश्मों वाले शैल अभिनव–कालीन हो सकते हैं। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया और यूरोप के एक ही प्रकार के जीवाश्मों वाले शैल निश्चय ही समकालिक या तुल्यकालिक नहीं। अतः जीवाश्मों की सहायता से स्थापित सह–सम्बन्धन में समकालिकता का बोध गलत है। इस प्रकार के जीवाश्मीय समानता के लिए हक्सले ने समकाल क्रम (Homotaxis) नाम प्रस्तावित किया। इस प्रकार कथित जीवाश्मयुक्त यूरोपीय और आस्ट्रेलियाई शैल समकालिक हों चाहे न हों, लेकिन समस्तर क्रमिक अवश्य हैं।

सामान्य रूप से 'समस्तर क्रम' की धारणा महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यदि विस्तार से अध्ययन किया जाए तो दो समस्तर क्रमिक संस्तरों या शैल–समूहों में उनकी आपेक्षिक आयु से सम्बन्धित प्रमाण अवश्य मिल जाएंगे। इस प्रकार यदि पर्याप्त जीवाश्मीय सूचना एकत्रित की जाए और उनका विधिवत विश्लेषण किया जाए तो समस्तर क्रम की धारणा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती।

विकासवाद की 'नव डारवीनियन' धारणा के अनुसार जीव–उत्परिवर्तन (Gene-Mutation) के कारण प्रजातियों का नया प्रकार पैदा होता है जिसकी आयु अथवा अस्तित्व प्राकृतिक चयन द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवाश्म की विविधता के बावजूद उनमें कालगत क्रमिकता का गुण है। इस प्रकार जीवाश्म सह–सम्बन्धन के लिए सर्वाधिक परिशुद्ध आधार हैं। इनके आधार पर सह–सम्बन्धन की निम्नलिखित विधियाँ हैं–

(1) जीवाश्मीय संस्तर स्थितियों के आधार पर सह–सम्बन्धन।

(2) एपिबोल (Epibole) एवं दिवा (Hemera) तथा सह–सम्बन्धन।

(3) सूचक जीवाश्म (Index Fossil) एवं सह–सम्बन्धन।

(4) जीवाश्मों का काल परास (Range) एवं सह–सम्बन्धन।

'जीवाश्मीय संस्तर विधि' की धारणा जर्मन भूवेत्ता अलबर्ट आपेल की देन है। आपेल ने सन् 1896 में एक पत्र के माध्यम से स्पष्ट किया कि शैलों का स्थूल सह–सम्बन्धन ही किया जाता है। लेकिन यदि उसे सूक्ष्म एककों में विभाजित कर उनकी विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे ही एककों से तुलना की जाए तो सह–सम्बन्धन अधिक सुविधाजनक होगा। इन सूक्ष्म एककों को संस्तर स्थिति कहा जाता है। संस्तर स्थिति की स्थापना जीवों के विकास के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार समस्त क्षेत्रों में जीवों में विकास से सम्बन्धित परिवर्तन एक साथ ही घटित होते हैं। अतः ऐसे परिवर्तन सह–सम्बन्ध के लिये समुचित आधार हैं। संस्तर स्थैतिक जीवाश्मों (Zonal Fossils) की अपनी ही विशेषताएँ होती हैं। उनका बहुतायत में तथा सीमित समयावधि के लिए पाया जाना तथा उनको आसानी से पहचाना जा सके, ऐसी विशेषताएँ होना आवश्यक है। कभी–कभी निर्धारित संस्तर स्थितियाँ एक क्षेत्र विशेष में सीमित होती हैं। इस प्रकार के क्षेत्र को संस्तर स्थैतिक प्रदेश (Zonal Province) कहते हैं।

प्रत्येक प्रजाति के जीवनकाल का एक भाग ऐसा होता है जिसमें वह अपने विकास की पराकाष्ठा में होता है। इस पराकाष्ठा काल को 'दिवा' (Hemera) कहते हैं। इस काल में निक्षेपित शैलों को एपिबोल (Epibole) कहेंगे। दिवा काल में प्रजाति की अपनी संख्या अधिकतम होती है। समूचे विश्व में प्रजाति विशेष के 'दिवा' और 'एपिबोल' ज्ञात किये जा सकते हैं। यह काल समूची धरती पर एक साथ ही होगा। अतः दिवा और एपिबोल भी सह–सम्बन्ध में सहायक होंगे। लेकिन प्रत्येक स्पिशीज के एपिबोल निर्धारित करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। हर स्पिशीज का 'दिवाकाल' उनकी संख्या के द्वारा ज्ञात किया जा सके, आवश्यक नहीं। अतः इस धारणा का व्यावहारिक महत्त्व अधिक नहीं है।

'सूचक जीवाश्म' (Index Fossil) की धारणा भी सह–सम्बन्धन के लिए उपयोगी है। 'सूचक जीवाश्म' के दो अर्थ हैं। यूरोप में जीवाश्मीय संस्तर स्थिति के प्रारूपिक तथा एपिबोल के अभिलाक्षणिक जीवाश्म को सूचक जीवाश्म मानते हैं। अमरीकी भूविदों के अनुसार संस्तर स्थैतिक जीवाश्म ही सूचक जीवाश्म हैं। सूचक जीवाश्मों की सहायता से सह–सम्बन्धन में सबसे बड़ी कठिनाई स्पिशीज का अभिनिर्धारण है। सूचक–जीवाश्मों में सही अभिनिर्धारण के लिए पुराजीवाश्मिकी का समुचित ज्ञान आवश्यक है।

सभी विलुप्त जीवों के अवशेष समूचे अतीत को तीन भागों में विभाजित करते हैं। सम्बन्धित जीव की उत्पत्ति के पहले काल, जीव का जीवनकाल और जीव के विलुप्त होने के बाद का काल। जीव के समस्त जीवनकाल और उसमें निक्षेपित शैल को जीव संस्तर स्थिति (Biozone) कहते हैं। यह उसके अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि है। लेकिन शैलों में परिरक्षित जीवाश्मों की सहायता से ज्ञात अवधि को स्तर–वैन्यासिक अवधि (Stratigraphic Range) नाम देना उचित होगा। क्योंकि आवश्यक नहीं कि जीव संस्तर स्थिति और स्तर–वैन्यासिक अवधि दोनों पूर्णतया बराबर हों। यह स्पष्ट है कि जीवाश्मों के सन्दर्भ में दो काल सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं– आगमन और विलोपन। इस प्रकार विभिन्न सेक्शन और क्षेत्रों के शैलों में परिरक्षित जीवाश्मों की अवधि का अध्ययन ही सह–सम्बन्धन में सहायक होगा।

इस सब पर भी जीवाश्मों के आधार पर सह–सम्बन्धन की अपनी कठिनाइयाँ और कमियाँ हैं। जीव एक स्थान या क्षेत्र विशेष में उत्पन्न होकर प्रवसित हुए होंगे और अन्ततः समूची पृथ्वी पर, बाधाएँ होने पर भी, वितरित हुए होंगे। इस प्रकार उनके प्रवसन में भले ही कम, लेकिन कुछ न कुछ समय अवश्य लगा होगा। अतः वे शैल जिनसे विशेष स्पिशीज प्रतिवेदित हैं, आवश्यक नहीं कि वे समकालिक हों। डार्विन ने जीवाश्मों के अभिलेख को अपर्याप्त माना था। लेकिन उसके समय से अब तक जीवाश्मिकी में अनेक शोध–कार्य हो चुके हैं। फलस्वरूप उसके वर्तमान रूप में जीवों की उत्पत्ति और विकास के विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। अन्ततः जीवाश्म सह–सम्बन्धन और भौमिकीय अतीत के मापन के लिए सबसे सरल आधार है।

रेडियो एक्टिव आयु–निर्धारण एवं सह–संबंधन

रेडियो एक्टिव तत्व विघटन के पश्चात् दूसरे स्थिर तत्वों में परिवर्तित हो जाते हैं। किसी शैल में उपस्थित मूल तत्व तथा उत्पाद तत्व की मात्रा एवं मूल तत्व के उत्पाद तत्व में विघटन दर के ज्ञात होने पर किसी शैल की आयु ज्ञात की जा सकती है। इन विधियों का संक्षिप्त विवरण भौतिक भू–विज्ञान परिच्छेद के 'पृथ्वी की आयु' नामक अध्याय में किया गया है। दो विभिन्न क्षेत्रों में स्थित शैलों की आयु यदि रेडियो एक्टिव विधि से एक ही निकले तो उनको समकालीन कहा जा सकता है।

शैलों की अश्म–वैन्यासिक विशेषता एवं सह–संबंधन

एक निश्चित समय में विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित होने वाले शैलों में एक समान लक्षण मिल सकते हैं। इसी प्रकार एक विशाल श्रेणी में निक्षेपित होने वाले शैलों के लक्षण भी एक जैसे होते हैं। लेकिन श्रेणी की गहराई एवं अन्य स्थितियों में परिवर्तन के कारण शैलों में कुछ क्षैतिज परिवर्तन हो सकता है, इसे संलक्षणी परिवर्तन (Facies Change) कहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के रासायनिक एवं अश्म–वैन्यासिक लक्षणों में समानता उनको सह–सम्बन्धित करने का आधार हो सकती है।

स्तर–वैन्यासिक सातत्य एवं सह–संबंध

यदि दो सुदूर स्थित क्षेत्रों में मिलने वाले शैलों को चाहे वे विभिन्न संलक्षणों के ही हों, पूर्णरूपेण एक–दूसरे से जुड़ा हुआ और सातत्य में प्रमाणित किया जा सके तो वे शैल समकालीन होंगे।

विषम–वैन्यासिक एवं सह–संबंध

भौमिकीय शैल अनुक्रम के विकास में विषम विन्यासों का विशेष महत्त्व है। स्तर–वैन्यासिक अध्ययन की दृष्टि से विषम विन्यासों को दो प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है–(1) स्थानीय विषम विन्यास, (2) क्षेत्रीय या व्यापक विषम विन्यास। आद्य महाकल्पेतर (Eparchaean) विषम विन्यास के सदृश कुछ विषम विन्यास तो विश्वव्यापक है। कुछ विषम विन्यास क्षेत्र या निश्चित भू–भाग में ही सीमित रहते हैं। विषम–विन्यास निक्षेपण में अन्तराल के द्योतक होने के कारण विवर्तनिक हलचलों से भी उनका सीधा सम्बन्ध होता है। यदि दो विलग क्षेत्रों में एक जैसी स्थितियों में पाए जाने वाले विषम विन्यासों के मध्य कोई शैल पाया जाता है तो उन्हें सह–संबंधित किया जाता है।

कायान्तरण की कोटि और सह–संबंधन

कायान्तरण के प्रक्रम शैलों की विशेषताओं को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। विभिन्न कोटि के कायान्तरण पर एक ही मूल शैल विभिन्न प्रकार के कायान्तरित शैलों में परवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार कायान्तरण के पूर्व जिन शैलों को आसानी से सह–संबंधित किया जा सकता था, उन्हीं शैलों के कायान्तरण से प्रभावित होने पर उनका सह–सम्बन्धन कठिन हो जाता है। ऐसी स्थितियों में कायान्तरण से पहले मूल शैल की विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अन्यथा सह–संबंधन असम्भव हो जाएगा।

संरचनात्मक एवं विवर्तनिक विक्षोभ तथा सह–संबंधन

विवर्तनिक एवं संरचनात्मक हलचले एक सीमित समय तक चलती हैं तथा केवल पूर्व निर्मित शैलों को प्रभावित कर पाती हैं। बाद में निर्मित होने वाले शैल उनसे अछूते रह जाते हैं। इस प्रकार संरचनात्मक एवं विवर्तनिक विक्षोभ भी शैलों के सह–संबंधन में सहयोगी हो सकते हैं।

आग्नेय अन्तर्वेधों से संबंध एवं पश्च–जात धातु निक्षेपों एवं खनिजों से संबंध भी शैलों के सह–संबंधन में उपयोगी हैं। इन विभिन्न अध्ययनों के आधार पर क्षेत्र विशेष एवं समूची पृथ्वी पर शैल–अनुक्रम निर्धारित किया जा सकता है। अतः सह–संबंधन एवं उनकी सही व्याख्या स्तरित शैल–विज्ञान का आधार है।

शैल स्तरिक इकाईयां

सीमांकित शैल समूह जैसे आग्नेय बहिर्वेधी शैल (Extrusive rock), अवसादी शैल (Sedimentary rock) व कायांतरित शैल (Metamorphic rock) में पाये जाने वाले अश्मिक गुण एवं स्तरिक स्थान से उनको पहचानना एवं आलेखन को शैल स्तरिक इकाईयां कहते हैं।

शैल स्तरिक इकाईयां निम्न हैं–

महासंघ	(Supergroup)
संघ	(Group)
शैल समूह	(Formation)
मेम्बर	(Member)
संस्तर	(Bed)
मार्कर बेड	(Marker bed)

समय स्तरिक इकाईयां

वे संस्तर या शैल समूह जो कि एक निश्चित भौमिकीय काल अवधि के अन्दर निक्षेपित/जमा होते हैं एवं उनके अन्दर द्योतक जीवाश्म मिलते हैं, उनको समय स्तरिक इकाईयां कहते हैं। दूसरे शब्दों में एक निश्चित भौमिकीय काल में निर्मित शैलों, जैसे कि जैव स्तरिकी शैल, शैल एकक (Litho units) अथवा शैल का अन्य कोई विशेष गुण जो कि उस काल को दर्शाता हो को समय स्तरिक इकाईयां कहते हैं (तालिका 5.1)।

तालिका 5.1: भौमिकीय कालानुक्रम

महाकल्प	कल्प	युग	काल अवधि (मिलियन वर्षों में*)
नूतन जीवी महाकल्प (CENOZOIC ERA)	चतुर्थ (Quaternary)	होलोसिन (Holocene)	0.01 से वर्तमान
		प्लीस्टोसिन (Pleistocene)	3.0 से 1.0
	तृतीयक (Tertiary)	प्लायोसिन (Pliocene)	12 से 3.0
		मायोसिन (Miocene)	25 से 12
		ओलिगोसिन (Oligocene)	40 से 25
		इओसिन (Eocene)	60 से 40
		पेलियोसिन (Palaeocene)	68 से 60
मध्य जीवी महाकल्प (MESOZOIC ERA)	द्वितीयक (Secondary)	क्रिटेशियस (Cretaceous)	135 से 68
		जुरैसिक (Jurassic)	180 से 135
		ट्रायेसिक (Triassic)	225 से 180
पुरा जीवी महाकल्प (PALAEOZOIC ERA)	प्राथमिक (Primary)	परमियन (Permian)	270 से 225
		कार्बनी (Carboniferous)	350 से 270
		डिवोनी (Devonian)	400 से 350
		सिलुरियन (Silurian)	440 से 400
		आर्डोविसियन (Ordovician)	500 से 440
		केम्ब्रियन (Cambrian)	600 से 500
कैम्ब्रियन पूर्व महाकल्प (PRECAMBRIAN ERA)		प्राग्जीवी (Proterozoic)	2500 से 600
		आद्य (Archaean)	4000 से 2500

* (1 मिलियन वर्ष = 10 लाख वर्ष)

जैव स्तरिक इकाईयां

वे शैल समूह जिनको उसमें पाये जाने वाले विशिष्ट जीवाश्मों से पहचाना जाए या परिभाषित किया जावे उनको जैव स्तरिक इकाईयां कहते हैं। जैव स्तरिकी की आधारभूत इकाई जैव क्षेत्र (Bio-zone) है। एक शैल समूह को विभिन्न प्रकार एवं श्रेणी के जैव क्षेत्र एवं उपक्षेत्र (Sub zone) में बांटा जा सकता है।

जैव स्तरिक इकाईयां तीन प्रकार की होती है–

(i) अन्तराल मण्डल/क्षेत्र (Interval zone)

(ii) एकत्रित मण्डल/क्षेत्र (Assemblage zone)

(iii) प्रचुरता मण्डल/क्षेत्र (Abundance zone)

(i) अन्तराल मण्डल/क्षेत्र (Interval zone) – शैल संस्तर के बीच का वह भाग जिसके नीचे अथवा ऊपर के शैल संस्तर में किसी एक वंश के जीवाश्म निम्न या/अथवा उच्च उपस्थिति दर्ज कराते हों को अन्तराल मण्डल/क्षेत्र कहते हैं।

(ii) एकत्रित मण्डल/क्षेत्र (Assemblage zone) – शैल समूह के अंदर वे जैव क्षेत्र (Bio-zone) जिसके अंदर तीन या इससे अधिक वंश या समूह के जीवाश्म पाये जाते हैं।

(iii) प्रचुरता मण्डल/क्षेत्र (Abundance zone) – शैल समूह के अन्दर वे जैव क्षेत्र जिसमें कोई एक या उससे अधिक वंश या समूह के जीवाश्म बहुत अधिक प्रचुर मात्रा में पाये जाते हों, उसको प्रचुरता क्षेत्र कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से किसमें तीन या अधिक वंश/समूह के जीवाश्म पाये जाते हैं–
   (अ) अन्तराल मण्डल (ब) एकत्रित मण्डल
   (स) प्रचुरता मण्डल (द) जैव क्षेत्र
2. निम्न में से जैव स्तरिकी आधारभूत ईकाई कौनसी है–
   (अ) शैल एकक (ब) जैव क्षेत्र
   (स) एकत्रित क्षेत्र (द) प्रचुरता क्षेत्र
3. निम्न में से शैल स्तरिकी की ईकाई नहीं है–
   (अ) शैल समूह (ब) संघ
   (स) संस्तर (द) अश्म एकक
4. निम्न में से कौनसा कल्प या समूह नहीं है–
   (अ) परमियन (ब) आर्डोविसियन
   (स) पेलियोजोईक (द) सिलुरियन

5. निम्न में से कौनसा महाकल्प नहीं है–
   (अ) पेलियोजोईक (ब) केम्ब्रियन
   (स) मिसोजोईक (द) सिनोजोईक

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी की परिभाषा दीजिये।
2. स्तरिकी का प्रमुख उद्देश्य बताईये।
3. सह–संबंधन या समक्रम कैसे निर्धारित किया जाता है?
4. अध्यारोपण का सिद्धान्त किसने और कब दिया था?
5. संस्तर व शैल समूह किसे कहते हैं।
6. सह–संबंधन की विभिन्न कसौटियां बताईये।
7. दिवा व एपिबोल किसे कहते हैं?
8. शैल एकक से क्या अभिप्राय है?
9. अश्म एककों की परिभाषा दीजिये।
10. इन्टरवेल जोन या अन्तराल मण्डल से क्या अभिप्राय है?
11. प्रचुरता मण्डल से आप क्या समझते हैं?
12. जैव स्तरिकी की आधारभूत इकाई क्या है?
13. एकत्रित मण्डल या असमेब्लेज जोन से क्या अभिप्राय है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी की सहायता से किसी क्षेत्र विशेष का पुरा–भूगोल किस प्रकार निश्चित किया जाता है।
2. संस्तर द्वारा किसी क्षेत्र का निक्षेपण कैसे ज्ञात किया जाता है?
3. अध्यारोपण के सिद्धान्त को समझाइये।
4. सह–संबंधन की कुल कसौटियां कितने प्रकार की है? एवं जीवाश्म सह–संबंधन का वर्णन कीजिये।
5. विषम विन्यास सह–संबंधन से क्या अभिप्राय है?
6. स्तर वैन्यासिक अवधि से क्या अभिप्राय है? समझाइये।
7. संलक्षणी परिवर्तन से क्या अभिप्राय है?
8. सह–संबंधन की विभिन्न विधियां बताइये।
9. समय स्तरिकी ईकाइयां किसे कहते हैं? इसका वर्गीकरण उदाहरण सहित समझाइये।
10. भौमिकीय कालानुक्रम समय श्रेणी को समझाइये।
11. रेडियो एक्टिव आयु निर्धारण को समझाइये।
12. सूचक जीवाश्म की सहायता से सह–संबंधन को समझाइये।
13. अन्तराल व प्रचुरता मण्डल को समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी के मुख्य सिद्धान्त क्या है? व इनकी विवेचना कीजिये।
2. शैल स्तरिकी ईकाइयों से क्या अभिप्राय है? विस्तार से समझाइये।
3. समय स्तरिकी ईकाइयां किसे कहते हैं? एवं वे किस प्रकार सह–संबंधन ज्ञात करने में सहायक है?
4. जैव स्तरिकी ईकाइयों को परिभाषित कीजिये। एवं उनका वर्णन कीजिये।

उत्तरमालाः 1. (ब) 2. (ब) 3. (द) 4. (स) 5. (ब)